आधुनिक हिंदी कविताओं में समकालीनता बोध

डॉ. सजीव. के
असिस्टेंट प्रोफेसर,
एन.एस.एस. कॉलेज,
ओट्टप्पालम।

समकालीन कविताओं में प्रतिपादित विचार-वाणियों की चर्चा वर्तमान संदर्भ में महत्वपूर्ण है। महामारी, प्रकृति-प्रकोप, सामाजिक विद्रूपता, राजनीतिक उथल-पुथल, राष्ट्रों के बीच भौगोलिक एवं आर्थिक मुकाबले, बढ़ती पूँजीवादी सभ्यता, जलवायु परिवर्तन आदि अनेक संकटों से गुज़रती दुनिया में कविता, साहित्य और सोशियल मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण है। आधुनिक युग में तकनीकी-इलक्ट्रोणिकी उपकरणों के प्रचुर-प्रयोग से पुरानी शैली की कागज़ी कविताओं का प्रचार भले ही कम हो, लेकिन मनुष्यता का संरक्षण और संपोषण को मुख्य दायित्व मानकर कवि लोग आज भी समाज में सक्रिय है। समकालीन संकट केवल कविता का नहीं, बल्कि विश्वसमाज का है। कुछ लोग समकालीन कविताओं पर आरोप लगाया जाता है कि कविता का जीवन और अनुभव कल्का होने से यह संकट आ गया है। लेकिन हम जानते है कि सुप्त एवं शंकित दशाओं से मुक्त होकर समकालीन कवि व कविता चुनौतियों की सामने करते हुए सामाजिक उत्थान और मानव मंगल केलिए सदा जागरूक है। दुनिया में मानव की नागरिकता पर सवाल उठन तथा विलासी उपभोक्ता के रूप में मानव के परिवर्तित होने की स्थिति पर हिंदी के समकालीन कवि मौन नहीं बैठ सकते। उन्होंने जीवन की संकीर्णताओं और वैचारिक संघर्षों को आत्मसात् करके अपनी कविताओं पूँजीवाद, शोषण, सामाजिक विघटन, सियासी साजिश, साम्राज्यवादी षड़यंत्र आदि के विरुद्ध विचार-विद्रोह को मुखरित किया।

'समकालीन' का संबंध एक ओर समय विशेष से है लेकिन इससे भी बढ़कर समय के साथ सरोकार से। समसामयिक विचारों को आत्मसात्कर साहित्य के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कलम चलाना और विडम्बनाओं और असंगतियों के विरुद्ध प्रतिरोध स्वर उठाना समकालीन साहित्य का लक्ष्य है। समकालीनता एक रचना प्रक्रिया ही नहीं है, समाज के लिए अनिवार्य धारणाओं को ग्रहण करते हुए आगे बढ़नेवाली एक चिरनवीन अवधारणा है।

समकालीन कविताएँ सचमुच अपने समय के यथार्थों की सही समझ है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो ये कविताएँ सांस्कृतिक विमर्श हैं। निराला के समय से काव्यक्षेत्र में अपने समय के यथार्थ का चित्रण ही होता आ रहा है, पर 'समकालीन' संदर्भ संज्ञा का प्रचार नई कविता आंदोलन का ही उपज है। समय, संदर्भ और जीवन की जटिलता के वैविध्य से काव्य भावनाओं में भी वैविध्य का अवतरण सहज है। इन विविधताओं में औपनिवेशन संस्कृति, विस्थापितों के यथार्थ, आदिवासी-दलित विमर्श, स्त्री-विमर्श, वृद्ध जनों की उपेक्षा, पर्यावरण-जलवायु संबंधी चुनौतियाँ आदि है।

यथार्थ के पटल पर रचना करने के लिए वचनबद्ध समकालीन लेखकों का मन हमेशा हल-चल एवं उद्वेलन से भरा रहता है। गुलामी के दिनों के पीडानुभवों से संत्रस्त कवियों जैसे, वर्तमान साहित्यकार भी बेचैन और अस्वस्थ है। हर दिन उनके सामने नए-नए विषय आते हैं।

विषय प्रवेश

समकालीन कविता की परिभाषा किसी सीमित समय में लिखी गयी कविताओं को लेकर हम नहीं दे सकते। विचार ही इसका आधार है। हर समय भूतकालीन, समकालीन, भाविकालीन विचारों की धुन में रहनेवाले लोग समाज में होते हैं। कुछ लोग भूतकालिक आदर्शों की स्मृति पर रहते है तो समकालीन कवि, सामाजिक तथ्यों व यथार्थ से संघर्ष करते हुए जीवन को सफल बनाते हैं, भविष्य की आशा में रहने वालों भी कम नहीं है।

नयी कविता आंदोलन की कोस में जन्म लेकर सामाजिक अनुभवों की कोस में जन्म लेकर सामाजिक अनुभवों की धरती पर अनेक प्रवृत्तियों का प्रचार हुआ। इनको हम सामान्य रूप से समकालीन साहित्य कह सकते हैं। साठोत्तरी कविता, आठवाँ, नौवीं दसवीं दशकीय कविताओं में हाथ-पैर पसार कर सांस्कृतिक इतिहास के सामग्रियों की अजस्रधारा के रूप जनमानस को सफलतापूर्वक प्रभावित किया।

डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने लिखा है - समकालीन एक काल में साथ-साथ जीना नहीं है। समकालीन अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना है।

स्मकालीन समाज में धार्मिकता, राट्रप्रेम, अतिविनम्रता, सदाचार इन सब की सच्चाइयों परख भी कठिन हो गए है। कुमार अम्बुज ने 'क्रूरता' नामक कविता में लिखा है - ''वह संस्कृति की तरह आएगी, उसका कोई विरोधहीन होगा कोशिश सिर्फ यह होगी कि किस तरह वह अधिक सभ्य और अधिक ऐतिहासिक दो।'' (क्रूरता, पृ. 25)

आज राजनीतिक ने विश्वशांति और सामाजिक मंगल पर पानी ही नहीं, बाढ बहा दिया है।

राष्ट्र पुनर्निमाण के नाम पर बाज़ारवादी राजनीतिक पहल के जरिए आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक नीतियों पर अतिक्रमण कर रहे है-कवि अंबुज ने लिखा है -

''फिर मनुष्य ही करते हैं मनुष्यों पर अतिक्रमण
घेरते हुए खुद को वस्तुओं से
आसक्ति की चाशनी में वे पागते चले जाते है
एक ऐसा संसार
जिसमें मानवीय दिखता हुआ हर उपक्रम
किसी नयी वस्तु को ले सकने की सामर्थ्य बताता है।

(अतिक्रमण, पृ. 27)

वर्तमान समाज पूँजी की महत्वाकांक्षा और आसक्ति की चाशनी में पकता है। सब इसके मोहपाश में फँस जाते है। इस मोहपाश के बन्धन से मुक्ति के लिए दीक्षा ग्रहण और तपस्या के मार्ग पर चलनेवाले है समकालीन कवि। लेकिन इस कठिन समय में विकल्पों की गुंजाईश भी कम है-

''जीवन के सामने सबसे बडी मुश्किल यह है
कि उम्मीद का
कोई विकल्प नहीं
मृत्यु भी नहीं।'' (कुमार अंबुज-अमीरी रेखा, पृ. 71)

केवल कविता ही एक विकल्प है। समय की माँग को बुलंद करने के साथ-साथ सामाजिक हौसलों को सँभालने के लिए भी समकालीन कवि उद्यत है।

समाज की व्यवस्था और खोखले धर्मबोध कुठाराघात करनेवाली समकालीन कविता परिस्थितियों की देन है। ''सबसे ज़रूरी काम'' कविता में चंद्रकांत देवताले लिखते है -

''प्रजातंत्र की रथयात्रा निकल रही है
औरतों और बच्चों को रौंदा जा रहा है
गुंडों और नोटों की ताकत से हतप्रभ लोग
खामोश खडे है
मैं भी खामोष खडु हूँ और काँप रहा हूँ
और ताप रहा हुँ और बचा रहा हूँ ठिठुरने से

अपनी आत्मा को
शायद यही है इस वक्त का
सबसे ज़रूरी काम।''

(चंद्रकांत देवताले-सबसे ज़रूरी काम, पृ. 15)

साम्राज्यवादियों के इशारे पर फैलने वाले उदारीकरण और बाज़ारवाद ने जन-जन को झकझोर कर दिया है। समाज, परिवार, देश-काल और रिश्ते-नाते का बोध भी खो दिए है लोग। मुनाफे के सामने मानव मूल्य नगण्य है। कवि अष्टभुजा शुक्ल लिखते है -

''देश रे देश
कितना परदेश हो गया है तू!
स्वप्न में
दीख रहा है विश्व-बाज़ार
रहति नात-हित-रिश्तेदार।''

(अष्टभुजा शुक्ल-हमारा देश, पृ. 11)

उदयप्रकाश, मंगलेश डबराल, पंकज सिंह आदि समकालीन कवियों ने भी इन विकृतियों का खुलासा किया है।

''मानव बुद्धि को दिग्भ्रमित करनेवाले मीडिया के प्रभाव भी समकालीन कविताओं का प्रतिपाद्य है-

''फिर पत्नी कहती है-इतना सिद्धांतवादी होना ठीक नहीं
बच्चे कहते है, आपका व्यवहार आम आदमियों जैसा नहीं
टी.वी, रेडियो, अखबार कहते हैं
चाहो तो बने रहो।''

(कुमार अंबुज ''अवांछित लोग'', पृ. 5)

राजनीति की नैतिक हीनता एवं मूल्यविघटन की ओर इशारा करते हुए समकालीन कवि कभी डरते नहीं है। आज जनतंत्र का मतलब है चुनाव, वोट, सत्ता, शासन और रिश्वत। चुनाव के समय मधुरवादा देकर मतदाताओं की खुशामद करनेवाले नेता गद्दी पर बैठते ही जनता को भूल जाते है -

''राजनीति के पुरोधा के भाषण
और एक शराबी की कै का रंग
एक जैसा है।''

रामकुमार अंबुज

(राजनीति, कुछ सूचनाएँ ''क्रूरता'', पृ. 66)

जंगल-नदियों के संरक्षण के नाम पर करोडों रुपए बहाने वाले राजनेता का लक्ष्य भी पैसा कमाना है। पर्यावरण संरक्षण के नाम पर प्रकृति का विनाश भी करते है लोग। समकालीन कवि ज्ञानेन्द्रपति 'गंगातट' कविता में लिखते है -

''गंगा में जहाँ वह
नगर का नाला खुलता है
गंदा हुआ तो क्या
कलरव करता है
वहीं वहीं उसके अहरह हहराते मुख पर

बैठे हैं काली लम्बी टाँगोंवाले धौले बगुले
चौडे डैनों बेसौफ परवाजोंवाले बाज''

(ज्ञानेन्द्रपति, 'गंगातट', पृ. 62)

इसका मुख्य कारण पालिथिन है। पालिथिन समकालीन जीवन को ग्रसनेवाली एक बुरी चीज़ है -

पालिथिन!् पालिथिन!्
पालिथिन की मुट्ठी में बंद है बाज़ार
जिस तरह, बाज़ार की मुट्ठी में बंद है हम

(गंगातट, पृ. 95)

पालिथिन के घातक प्रभाव से गन्दा और मूमूर्श हो रही है गंगा-

''करिखाई है गंगा
विषपायी है गंगा
दुखियारी माई है गंगा
उस निर्भर पालिथिन के पडते ही
भारी हो जाता है उसका जी।''

(ज्ञानेन्द्रपति, 'गंगातट', पृ. 96)

लूट-तंत्र कइी बुनियाद पर विसंगतियों और विडम्बनाओं की क्रीडास्थली बनती जा रही है समकालीन धरती। जनता भूख-गरीबी- बीमारी बेरोज़गारी के आतंक तडप रही है। संप्रदायवाद, छिद्रवाद, क्षेत्रवाद, वंशवाद, रूढिवाद, जातिवाद, फासीवाद के ज़हर से समकालीन समाज दूषित हो गया है। औरतों पर बलात्कार होता है। उसका घर जलता है।

राष्ट्र की संस्कृति, उसका इतिहास महिलाओं के सजग सक्रिय भूमिका से ही सफल होता है।

''नारी तुम शक्ति हो, तुम जान हो
तुम ही संस्कारों की खान हो
क्रांति की अग्रदूत, गौरव की सार
नारी तुम चेतना का आह्वान हो।''

यह चेतनागीत नारी की उत्थान का नारा है। समकालीन साहित्यकार इस गीत के अक्षरों को उजागार करने, और स्त्री चेतना समर्थन देनेवाले है।

समकालीन समाज की भयावहता, आत्मविश्वास शोशित निराशाबोध आदि से संत्रस्त मानव जीवन का चित्र सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में है -

''अपना ही प्रतिबिम्बित
हमें दिखाई नहीं देता
अपनी ही चीख
गैर की मालूम पडती है
एक आखिरी बयान
जीने और मरने
हम दरज कराना चाहते है
वे छीनने आए है

हमसे हमारी भाशा।''

(सर्वेश्वरदयाल सक्सेना-''गरम हवाएँ'', पृ. 16)

सामने प्रस्तुत शोषक वर्ग की मुस्कुराहट में छिपी छल-कपट से कवि भयभीत नहीं सतर्क हो जाता है। आत्मनाश के बदले आत्मोत्थान केलिए वह तैयार हो जाता है।

इस संदर्भ में बिलखते समाज को संजीवनी बूटी का रस पिलाने में गजनन माधव 'मुक्तिबोध'-जैसे कवियों का प्रयास सराहनीय है जहाँ कहीं मनुष्यता को क्षति पहूँचती है वहाँ समकालीन कवि मुक्तिबोध प्रकट होता है-

''जिंदगी का तजुर्वात
जैसे तुम्हें मिले हैं
वैसे मुझे मिले है
जैसे तुम भी आदमी
वैसे मैं भी आदमी।''

(मुक्तिबोध, 'चाँद का मुँह टेढा है', पृ. 10)

समकालीन समाज की शोषणकारी संस्कृति में पोशाक-साफ-सुधरे और आर्काक हैं लेकिन दिमाग और हृदय छल-कपट से भरा हुआ है। मुँह का नारा हृदय तालमेल नहीं है। समाज के गणमान्य व्यक्ति जो हमेशा नैतिकता का पाठ पढ़ाते दिखाई देते है, वे खुद अनैतिकता गर्त में धँसे हुए है-

''इस सल्तनत में
हर आदमी उचककर चढ जाना चाहता है
धक्का देते हुए बढ जाना चाहता है
हर एक को अपनी-अपनी
पडी हुई है।
चढ़ने की सीढ़ियाँ
सिर पर चढी हुई है
''निसैनी-सोपानों का क्रम
ऊपर, हाथों में उठा हुआ
सिर पर पल रहा है
हर एक अपना-अपना स्वर्ग-सेतु
बुलडोज़र, क्रेन, उठाए चल रहा है
और वहीं-हर एक
लाल आँखों से घूरते हुए
दूसरे बुलडोज़र और लोहे के जीनेवाले को
मन-ही-मन कहता है
मारो स्साले को!
लिहाज़ा, यह सूरत पैदा हुई
कि फूट-फूट, दुई-दुई
बाहर भी दिल के भीतर भी।)

(मुक्तिबोध रचनावली, पृ. 247)

मुक्तिबोध कविता की मुख्य थीम ही जीवन की विसंगतियाँ है। उनकी लम्बी कविताएँ नदी की धारा की तरह बहती हुई ऊबड-खाबड ज़मीन को छूती हुई समकालीन साहित्य रूपी सागर में विचायित होती है। यह दरमियान कई चीज़ों को अपने साथ ले जाती है।

जीवन की आशा-आकांक्षा मुक्तिबोध की कविताओं की मुख्य धारा है। न्याय और सत्यनिष्ठा उनका सबसे बडा हथियार।

निष्कर्ष

समकालीन समाज की विडम्बनाओं के मद्देनज़र कविकर्म अत्यंत चुनौतीपूर्ण है। जातिवाद की ओट में छिद्रवाद, धर्म-संप्रदायवाद के सहारे आतंकवाद, आर्थिक-शैक्षिक पिछडेपन की भूमि पर नक्सलवाद, भाषा-क्षेत्र को लेकर विघटनवाद आदि कई असंगतियाँ है।

करन्सियों के ऊपर बैठक सत्ता भोगनेवाले राजनेता-दलित, पीडित, नारी, बेरोजगार युवा, विकलांग, बुजुर्गों, किसान वर्ग की यातनाओं से नज़रअंदाज़ है। मीडिया और वादों से शासित वर्ग को मौन बनाते है। लेकिन समकालीन कवियों की स्याही अब भी तेज़ है। उनके कलम की चकमक तीव्र हो रही है। शोषक वर्ग की चुनौतियों के सामने गले बढ़ाएँ, लेकिन लेखनी को समकालीन कवि सुरक्षित रखते है - आम जनता केलिए।

संदर्भ

1. अतिक्रमण, कुमार अंबुज, पृ. 27
2. क्रूरता, कुमार अंबुज, पृ. 25
3. अमीरी रेखा, कुमार अंबुज, पृ. 71
4. सबसे ज़रूरी काम, चंद्रकांत देवताले, पृ. 15
5. हमारे देश, अष्टभुजा शुक्ल, पृ. 11
6. अवांछित लोग, कुमार अंबुज, पृ. 5
7. क्रूरता, कुमार अंबुज, पृ. 5
8. ज्ञानेन्द्रपति, गंगातट, पृ. 82
9. वही, पृ. 95
10. वही, पृ. 96
11. गरम हवाएँ, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ. 16
12. चाँद का मुँह टेढा है, मुक्तिबोध, पृ. 10
13. मुक्तिबोध रचनावली, पृ. 247